कोन्हारा घाट

गीताश्री

कोन्हारा घाट

"ऊँउउ... ओह... माई गे... मर गेली..."

देवताघर में किसी के कराहने की आवाज आ रही थी। आवाज नहीं, एकल कराह थी, जो हौले से बाहर आ रही थी। जनेऊ के माहौल में इस वक्त कौन कराह रहा होगा... नन्हीं सी लड्डू सोचती हुई देवताघर में प्रवेश कर गई। चटाई पर एक दुबली पतली

https://www.hindiadda.com/konhara-ghat/

काया, सफेद साड़ी पहने लेटी हुई बेचैनी से करवटें बदल रही थीं। सिरहाने पीतल का चमकीला लोटा उलट कर रखा था। करवटें बदलती हुई वह काया अपना सिर उस चौड़ी पेंदे वाले लोटे पर रख देती, मानो वह तकिया हो। बगल में सूती कपड़े का बदरंग झोला रखा था। लड्डू झट से पहचान गई। ओह... ये तो बुढ़िया फुआ हैं। अक्सर वे बदरंग झोले को लेकर कहीं भी नमूदार हो जाती हैं। मानो उस झोले में उनकी जान धरी हो। झोले के बारे में कहते सुना है - "हमरा झोरा कोई छूइहे मत। ये हमर झोरा न हय, हमर सपना है।"

"हम इस झोरे के सहारे कहीं भी डेरा बना सकते हैं, हाँ। सब रख लो न तुम लोग... हमको कुछ नहीं चाहिए... बस हमको इस झोरे के साथ यहाँ से निकल जाने दो।"

अंतिम वाक्य कहते कहते फुआ लगभग गिड़गिड़ाने लगतीं। सब अनसुनी करके चले जाते। वे जहाँ होती, वहीं जमीन पर पसर कर बैठ जातीं, जैसे अभी तुरत समाधि में चली जाएँगी। माँ बताती थीं कि फुआ को पर्स का बड़ा शौक था। रंग-बिरंगे पर्स को वे बड़े सिहा सिहा कर देखती थी, किसी के कंधे पर टँगा हो। माँ के पर्स को बहुत छूती थीं। कहाँ से लिया, कितने में लिया... सवालों की बौछार...

माँ कहती - "आपको चाहिए तो ले लीजिए ना दीदी जी, हम दूसरा खरीद लेंगे..."

"अरे नहीं दुल्हिन... कि बात करइछअ, हमरा पर्स के कि काम... झोला काफी। सब चीज इसमें अट जाता है न। क ठो साड़ी पहन लेते हैं, दोसर झोले में। अखोर बखोर सब ठूँस दो... पर्स में कहाँ एतना जगह होता है... ई तुम लोगो को ही ठीक लगता है। हम अइसे ही पूछ रहे थे..."

लड्डू अपने खयालो में डूबी दरवाजे पर ही खड़ी थी कि फिर कराहने की आवाज आई। लगता है, गहरे दर्द में थीं, चटाई पर छटपटा रही थीं।

"क्या हुआ फुआ जी... तबियत खराब है क्या, माँ को बुला दूँ, कुछ चाहिए आपको...?"

वह काया थमी।

"नहीं बाबू, मत बुलाओ किसी को... माथा बहुत बथ रहा है... ठंडा तेल घर में कहीं से खोज के ला दो... हम लगा लेंगे, ठीक हो जाएगा..."

लड्डू दौड़ती हुई माँ के कमरे में गई। ठंडा तेल ताक पर धरा था। शाम को औरतें नचारी गाने आती हैं, उनको शाम को माँ तेल और सिंदूर लगाती हैं। तीन दिन से देख

रही है लड्डू। आँगन में चटाई पर बैठकर गोलबंद औरतें पहले शिव जी गाने गातीं फिर कुछ मस्ती वाले गाने होते। माँ सब औरतों को माथे में तेल चुपड़ देतीं और फिर नाक तक लाल सिंदूर। खुशी खुशी औरतें आँचल हटा कर माथा आगे कर देतीं। ये सब लगवाते हुए औरतों का श्रद्धा भाव देखने लायक होता। लड्डू को अजीब लगता कि माँ सबको लगाती हैं, बुढ़िया फुआ वहीं पास में बैठी होती हैं, उन्हें नहीं लगातीं। कई बार सोचा कि पूछे। फिर भीड़ देख कर सहम जाती। गोरी चिट्टी फुआ वैसे ही निर्लिप्त भाव से सब कुछ देखतीं और जब औरतें चुप हो जातीं तो वे अचानक से गाने लगतीं। उनके गाते ही बेसुरी आवाजें ठिठक जातीं। अकेली तान लेती वे... बाकी लोगो के होठ बुदबुदाते भर थे...

वे गातीं - "सिव जी के लाली लाली अँखियाँ कटारी मारेला..."

जब ये गाती तो उनके चेहरे पर लालित्य का भाव होता। रूठे हुए शिव को मनाने का भाव गजब अभिनय से दिखातीं। सब उन्हें मुग्ध भाव से देखते। वे खुद मुग्ध भाव से आकाश की तरफ देखतीं। वह जब भी गीत गातीं, उनकी भंगिमा बाकी औरतों से अलग होती। गाँव की औरतें या तो मुँह पर हाथ रखकर गातीं या माइक लेकर या आँचल से आधा मुँह ढक लेतीं। फुआ को गीत के साथ हीं गर्दन अपने आप ऊपर की ओर। मानो हवा में कोई लिपि पढ़ रही हों या कोई धुन सुन रही हों। जब तक गातीं, गर्दन ऊपर ही रहती।

"मिरगा के छाला कहाँ पायब हो... सिव मानत नाहीं..." गाते गाते विभोर इतनी कि सामने शिव होते तो वे गिड़गिड़ा कर मना ही लेतीं। रोज शाम की नचारी में यह गाना अनिवार्य बन हिस्सा बन गया था।

आज फुआ उन औरतों के गोल में नहीं बैठी हैं और देवताघर में पड़ी पडी कराह रही हैं। तेल लेकर शीघ्रता से लड्डू लौटी। आँगन में थोड़ी देर में गीत शुरू होगा और फुआ की खोज होगी। जल्दी से तेल मल देती हूँ, शायद फुआ ठीक हो जाएँ। आहट सुनकर फुआ ने हाथ बढाए, वे तेल लेना चाह रही थीं। लड्डू ने उन्हें शीशी नहीं पकड़ाई। उनके सिरहाने बैठ गई। लोटे पर से उनका सिर लुढ़कने ही वाला था कि लड्डू ने अपनी गोद में उनका सिर रख दिया। वे कुनमुनाई, कुछ कह रही थीं। लड्डू ने चुरुआ भर के तेल लिया और फुआ के माथे के बीचोबीच वैसे ही छोप दिया, जैसे माँ माथा दुखने पर बाबूजी को लगाती थीं। खूब सारा महकउआ तेल और लड्डू की छपछप... छप छप...।

फुआ को आराम आने लगा था। लड्डू ने पहली बार गौर से देखा, बुआ का सिर। काले घने बालों के बीच में कहीं कहीं सफेदी बादलों-सी झाँक रही थी। बीच में खाली माँग

पट्टी, जहाँ तेल की हल्की धार बह रही थी। नन्हें हाथों से उस धार को समेटती हुई लड्डू बार बार उस माँग पट्टी को देख रही थी। उसे वहाँ का सूनापन खल रहा था। क्या कभी फुआ सिंदूर लगाती होंगी, कैसी दिखती होंगी... सुंदर दिखती होंगी न, कितनी तो सुंदर है, गोरी गोरी मेम जैसी, ...लड्डू के भीतर तीव्र इच्छा जागी, फुआ को बाकी औरतों की तरह सजे-धजे देखने की। मन ही मन वह वह फुआ की माँग में सिंदूर लगा देख रही थी। माथे पर टिकुली और नाक तक सिंदूर वाली फुआ, कितनी शोभ रही थीं।

फुआ माथे में हल्के मसाज से सो गई। एकाध बार बुदबुदाई -

"छोड़ दो बाबू, जाओ, खेलो... बहुत हो गया। तुम बहुत कर दी। बड़ा तो कोई आजकल करता ही नहीं, तुम बच्चा होकर एतना कर दी..."

लड्डू ने उन्हें सुना ही नहीं। वह अपनी धुन में थी। वह बुढ़िया फुआ को रंगीन कपड़े में, सिंदूर लगाए, पूरे घर में चहकते फहकते देख रही थी। बड़की चाची जैसे चमकती रहती हैं, घर भर में। वे सबसे मजाक कर लेती हैं और सब उनसे। बड़ी रौनक लगाए रखती हैं। बस फुआ की उपस्थिति में वे शांत रहती हैं। वजह नहीं पता पर अक्सर फुआ के सामने वे सख्त मालूम पड़ती थीं। फुआ भी उनके सामने बनजारों की तरह बैठी रहतीं जैसे उनको दीन दुनिया से कोई लेना देना नहीं रह गया हो। वे विदेह हो जाती उस वक्त। लड्डू को अचानक गुस्सा आया। उसे पता नहीं होता था कि फुआ कहाँ रहती हैं, जब गाँव में कोई जग त्योहार हो तो सब जुटते थे। उसी वक्त फुआ भी दिखती थीं। जितने दिन रहतीं, लड्डू उनके साथ चिपके रहना चाहती थी। पर वे जैसे मोहमाया से मुक्ति के भाव में सबको देखती रहतीं। मशीनी अंदाज रहता जैसे... हँसी ठट्ठा के दौरान भी वे शांत-चित्त बैठी रहतीं। लड्डू को कोर्स में पढ़ी गई ताजा कहानी फूल कुमारी की याद हो आती। जो न कभी हँसती थी न रोती थी। उसे हँसाने की बहुत कोशिशें होतीं पर वह न हँसती थी और एक दिन एक राजकुमार वेश बदल कर आया और उसने अपनी अजीबोगरीब हरकतो से फूलकुमारी को हँसा दिया। कहानी के साथ फूलकुमारी का चित्र याद आया उसे। बेहद गंभीर, निर्विकार चेहरा। जो हँसी के इंतजार में हो कि कोई आए और लाए ढेर सारे फूलों-सी हँसी। फुआ का चेहरा कई बार उसी चित्र वाली फूलकुमारी की तरह दिखता।

फुआ को किसी और भाव में नहीं देखा था उसने। पर उनसे गजब लगाव महसूस करती थी।

लड्डू के मन में हूल उठा। फुआ का सिर हौले से नीचे धर कर उठी। कुलदेवता के सामने पूजा की सारी सामग्री रखी थी। तांबे की कटोरी मे लाल टूह टूह सिंदूर रखा था।

अपनी नन्हीं अनामिका उँगली को सिंदूर में डुबो दिया। उसे सिंदूर की ललाई और फुआ का गोरा दिप दिप जलता हुआ चेहरा और बीच में लकीर-सी पतली माँग दिख रही थी। कैसा लगेगा फुआ का चेहरा... एक बार देखना तो चाहिए न। सारी औरतें रोज नाक तक सिंदूर लगा कर ठिठोली करती हैं, फुआ की कोरी माँग उसे बिल्कुल अच्छी नहीं लगती। आज वैसे ही रंग देगी जैसे घर में किसी भी कोरे कागज को रंग देती है। दिन भर घर में सादा पेपर तलाशती रहती है, न मिले तो दीवारें हैं न, जिस पर रंगीन स्केच से आरी तिरछी लाइनें खींचा करती है। फुआ की माँग भी कोरी दिख रही है। वह लाल रंग माँग रही है। वह भर देगी कोरेपन को। किसी को क्या पता चलेगा। फुआ बेखबर सो रही थीं। दर्द से राहत के बाद उनका चेहरा कितना शांत, स्निग्ध लग रहा था। सबसे सुंदर हैं फुआ... उन्हें सजने का मन क्यों नहीं होता। क्यों वे अलग थलग रहती हैं। माँ तो बिना सिंदूर लगाए खाना नहीं खातीं। उनका रोज का नियम है। पतली, लंबी-सी कोई लकड़ीनुमा नकीली चीज है, जिससे सिंदूर लगाती हैं माँ। हाथ में लेकर कई बार उलट-पुलट कर देखा। माँ ने झटक लिया-छूना मत, चुभ जाएगा। साही का काँटा है बेटा... देखा नहीं न कभी। एक जानवर होता है, उसकी देह पर बड़े बड़े काँटे होते हैं... वही काँटा है, सिंदूर लगाने के काम आता है। तेरे खेलने की चीज नहीं...।

काँटों भरा जानवर...!! बालमन कौतुहल से भर उठा। ये काँटा फुआ के झोले में होगा या नहीं? नन्हीं आँखों में सवालों के बुलबुले तैरने लगे। उसे लगा फुआ की देह में असंख्य काँटे उग आए हैं, शायद इसीलिए सब उनसे दूर रहते हैं। फुआ की पतली देह रेंगने लगी थी जमीन पर, काँटों से लदी देह... वह जंगल की तरफ जा रही थीं। असंख्य आवाजें उन्हें बुला रही थीं। किसी आवाज को लड्डू नहीं पहचान पा रही है।

उसने पलट कर सोती हुई फुआ को देखा। अब भी वह बेखबर सो रही थीं। नहीं, फुआ की देह में काँटे तो नहीं उगे थे। उसने सुकून की साँस ली। फुआ के साथ सब कुछ ठीक तो है, फिर क्यों वे सिंगार नहीं करतीं।

वह एक दिन पता करके रहेगी। फुआ क्यों सिंदूर और काँटे से दूर रहती है?

"फुआ को क्या हुआ है...?"

नन्हीं उँगलियाँ आगे बढीं...

उसने सिंदूर की पतली लकीर माँग से लेकर नाक तक खींच दी।

बाहर शोर उठ रहा था। देवतापूज्जी का समय हो रहा था। उस लंबी चौड़ी हवेली में सिर्फ फुआ के लिए कोई कमरा नहीं था। वे जब भी आतीं, देवताघर में डेरा जमा लेतीं। उस घर में कोई और सोता नहीं था। किसी को अनुमति नहीं थी। कमरे के पूरब कोने में देवस्थान बना था। ऊँची जगह, मिट्टी से बनी हुई, जहाँ कुलदेवी की अनगढ़ मूर्ति रखी थी। मूर्ति क्या, ग्रे रंग की मिट्टी का ढेला सा कुछ था, जिस पर तीन रंगों के सिंदूर की निशान थे। हमेशा फूलों से ढकी रहती देवी। रोज भोग लगाते समय देवी की साफ सफाई होती और उनकी अनगढ़ता फिर से रंगीन फूलों से ढक जाती। आसपास कोई देवी देवता नहीं। कुछ फोटो जरूर फ्रेम में मढ़े हुए रखे थे। लगभग सारे देवी देवता तसवीरों में थे। मिट्टी का लौंदा थीं तो बस कुलदेवी बन्नी गौरैया, जिनकी रोज पूजा अनिवार्य थी। इतने सारे देवी देवताओं के होते हुए भी कुलदेवी की उपस्थिति, उनका महत्व बुढ़िया फुआ को बहुत चकित करता। बचपन में उत्सुकता बस कुलदेवी की कहानियाँ सुनना चाहतीं और उन्हें बन्नी का चरित्र इतना पसंद आता कि अपना नाम बन्नी रख लेतीं। बन्नी गौरैया... यह नाम बुदबुदाती और महसूसती कि वह उछल कूद रही हैं, गाछी पर छड़प रही हैं, दीवारें फाँद रही हैं, छत से बालू के ढेर पर कूद रही हैं। पंप के पानी में छप छप कर रही हैं... मिट्टी के ढेले को दीवार पर मार मार कर फोड़ रही हैं... ठठा रही हैं... वह गौरैया में तब्दील हो गई हैं। माँ ने बताया कि कई पुश्त पहले बन्नी उनकी कुल की थीं, बड़ी चंचल, शोख... वे देवी थीं, साक्षात। देवी बन गईं तब से आज तक कुल की रक्षा कर रही हैं। इससे ज्यादा जानकारी किसी के पास नहीं थी।

उनके चमत्कार के अनगिन किस्से।

वह मुग्ध होकर सुनती पर वह बन्नी नहीं बनना चाहती थीं। वह बन्नी को पूजा स्थान से मुक्त कराना चाहती थीं। बन्नी उनके स्वप्न में अक्सर आने लगी थी। उनकी तरह एक छोटी, चुलबुली लड़की उनके साथ फुदक रही है घर आँगन में। अचानक देखतीं कि वह लड़की मूर्ति में बदल रही हैं। बिना शक्ल-सूरत वाली मूर्ति। बन्नी का चेहरा उन्हें साफ दिखाई नहीं देता।

स्वप्न में वे कई बार खुद को ऐसी ही अनगढ़ मूर्ति में बदलते देखतीं और चीख मार कर नींद से उठ जातीं। जल्दी से अपने चेहरे पर हथेलियाँ फिराने लगतीं कि वे सलामत हैं या गायब हैं। नहीं... उन्हें बन्नी नहीं बनना। वे अनगढ़ मूर्ति नहीं बनना चाहतीं। वे चाहे न चाहें, उन्हें भी देवी तो बनना ही पड़ेगा। किसी न किसी घर की देवी। देवी तो बनी पर किसी मंदिर के लिए नहीं, किसी घर की। 13 साल की उम्र में बालिका वधू बनकर जब ससुराल पहुँचीं तो असलियत का पता चला कि वे बन्नी गौरैया देवी

नहीं, माया देवी में बदल चुकी हैं। सोनपुर मेला में नन्हीं कलाइयों पर फूल पत्ती वाले गोदने से चौधरी रामपूजन सिंह, ग्राम-मनिकपुर लिखवा दिया गया । वे चौधरियों के घर ब्याही गई हैं जहाँ कुलदेवी नहीं, कुलदेवता हैं सोखा बाबा। पूरा चौधरी टोला भगत के गानो से गूँजता -

जल नहीं, थल नहीं / तिरिया-पुरुस नहीं / तहाँ सोखा लेलन अवतार / अगिन ही कुंड बाबा तोहरो जन्म भेल / मईयाँ कोखि नहीं अवतार...

बालमन इस गान को सुनता और एक ही चीज पर गौर करता कि सोखा बाबा ने अवतार लिया था, अग्नि कुंड से। बन्नी गौरेया अवतार नहीं थीं। कौन थीं वे? कुल में कब पैदा हुईं या ऐसा क्या किया उन्होंने कि वे उन्हें सिंह खानदान ने उन्हें अपना कुलदेवी बना लिया? बहुत माथा लगातीं इसमें वे किसी निष्कर्ष तक पहुँचने में फेल हो जाती। नन्हीं सी जान, क्या क्या समझें। बाहर खेलने जाने का मन हो तो परदा। दरवाजे पर बैठी बूढ़ी सास जोर से झाड़ कर अंदर ठेल देतीं। मातृविहीन नइहर की याद में बिसुरती तो फुफा जी मेला दिखाने का वादा करते और बच्चो की तरह दुलार कर चले जाते। फुआ को छूते उन्हें डर लगता। किशोरी दुल्हन के जवान होने का इंतजार था उन्हें।

शादी के तुरंत बाद सोनपुर मेले में फुफा जी की ड्यूटी लगी थी। सोनपुर थाने का दारोगा कोई मामूली हाकिम नहीं होता था। फुआ को अपने साथ ले चले फुफा जी। उस जमाने में चौधरियों के यहाँ जीप हुआ करती थी जिससे वे पूरे इलाके पर रोब गाँठ सकते थे। वे भूस्वामी थे पर घर के सारे पुरुष नौकरी करने को उतावले थे कि इससे पढ़े लिखे होने का प्रमाण समझा जाता था। फुफा जी नौकरी पा चुके थे और उनके दो और भाई नौकरी के लिए हाथ पाँव मार रहे थे। जीप फुफा जी के पास रहा करती थी। अपने साथ वे अल्सेसियन कुत्ता लेकर चला करते जो गाँव आने पर फुआ के साथ खूब खेला करता। आँगन का खिलौना था ...टाइगर। उतना खूँखार कुत्ता फुआ के आँचल की छोर पकड़ कर खींचा करता और वे खिलखिला कर उछला करतीं। जिस दिन फुफा जी लौटते उस दिन फुआ उदास होतीं टाइगर के लिए। टाइगर लपक कर जीप में चढ़ जाता। दूर तक दरवाजे की ओट से फुआ टाइगर को देखतीं... फुफा जी खुद ड्राइव करते सो वे पलट कर नहीं देख पाते कि टाइगर पीछे ही देख रहा है।

पहली बार फुफा के साथ फुआ सोनपुर मेला आई थीं। इसके पहले मेला के बारे में सिर्फ सुना भर था, देखा नहीं था। दादा जी को मेला ठेला का कोई शौक नहीं था। सो घर के लोग खूँटे से बँधे जीवन जिया करते थे। मरद लोग कामकाज के लिए बाहर

जाते, शहर जाते पर पर्यटन की कोई संभावना दूर दूर तक नहीं थी। औरतों के लिए दो आँगन वाली हवेली ही काफी थी। बाहरी दुनिया से उनका संपर्क सिर्फ चूड़िहार या चूड़िहारिन ही जोड़ा करते थे जो समय समय पर बताते थे कि शहर में किस तरह की चूड़ियों का फैशन जोर मार रहा है या किसी फिल्म में नंदा या वैजयंती माला ने कौन सी चूड़ियाँ पहनीं, किस गाने में कौन सी चूड़ी पहनी गई। पान चबाती हुई सरसत्ती चूड़िहारिन देर तक वहाँ हँसी ठिठोली करती रहती। फुआ अपने बचपन में यह सब देख रही थीं और वे बाहर निकलना चाहती थीं। वे बाहर निकली पर ब्याह करके। स्कूल की सारी पढ़ाई घर पर हुई। लड़कियों के लिए अक्षर ज्ञान जरूरी समझने वाले दादा जी ने घर की सारी औरतों को हस्ताक्षर करने लायक पढ़ाई करवा दी थी। फुआ ने थोड़ा ज्यादा किताबें पढ़ लीं। उन किताबों ने उन्हें इसका फल दिया और वे एक पढ़े-लिखे चौधरी से ब्याही गईं।

सोनपुर मेला न हुआ, भौकाल हो गया। फुफा जी ड्यूटी पर और फुआ डगर डगर। दिन भर वे घूमती। आते समय माँ ने मुट्ठी भर पैसे दिए थे। कुछ फुफा जी ने भी थमा दिए थे। टाइगर फुफा जी के साथ मेला में घूमता रहता और फुआ अपने टेंट के आगे खड़ी होकर किसी की तलाश करतीं जिसके साथ मेला का चक्कर लगा सकें। दो दिन तक खड़े खड़े कोई परिचित न मिला। मेले का शोर उन्हें खींच रहा था। जाड़े की सर्द सुबह में फुआ कश्मीरी शाल लपेटे टेंट के बाहर खड़ी थीं। नजरें इधर उधर फिरा रही थीं। खोज की बेचैनी पैरों को कहीं भी खींच ले जाती है। 14 साल की दुल्हन चली जा रही थी, उसे ये भी होश नहीं कि वापस अपना ठिकाना खोज भी पाएगी या नहीं। बस कुछ खींच रहा था उन्हें। एक आवाज थी, दूर किसी लाउडस्पीकर से आ रही थी। कोई गा रहा था, ओजपूर्ण गान जैसा कुछ और बीच बीच में उठो... जागो... जैसी बातें...। आवाज में कशिश थी। वह कब उस शामियाने में घुसती चली गईं, नहीं पता। वहाँ लोक गायकों की मंडली बैठी हुई ओज में जोर जोर से गा रही थी। गायन मंडली में एक भी स्त्री नहीं। फुआ मंत्र-मुग्ध सी चुपचाप एक किशोर गायक के बगल में बैठ कर कब गाने लगीं, नहीं पता।

"सुंदर सुभूमि भइया, भारत के देसवा से, मोर प्राणे बसे हिमखोह रे बटोहिया..."

शामियाने में लोग आ रहे थे, जा रहे थे। किशोर गायक ने खिसक कर फुआ को जगह दी। खुद झाल बजाने लगा।

फुआ के चुप होते ही किशोर ने आँखों में मनुहार भरते हुए फिर गाने का इशारा किया...

वह गाने लगीं...

"एक द्वार घेरे रामा, हिम कोतलवा से एक द्वार सिंधु घहरावे रे बटोहिया..."

किशोर गायक और फुआ देर तक गाते रहे। अचानक फुआ को ध्यान आया कि वे रास्ता भटक कर यहाँ आ गई थीं। उन्हें वापस अपने टेंट में लौट जाना है। किशोर गायक उन्हें साथ छोड़ने दूर तक चला आया। वापस होते हुए किशोर से फुआ ने पूछा -

"कहाँ घर है?"

"हम घर में नहीं बाल आश्रम में रहते हैं... हम अनाथों का कोई घर नहीं होता, आना कभी..."

"कहाँ हैं?"

"कोन्हारा घाट"

"ओ... ठीक है। पहचान लोगे हमें... अगर हम बड़ होने के बाद आएँगे तो...?"

"तुम पहचान लोगी?"

सवाल दोनों ने किया, जवाब किसी ने नहीं सुना। टाइगर भागता हुआ आया और शॉल खींचने लगा था... फुफा जी पधार चुके थे।

देवताघर के बाहर हो-हल्ला सुन कर फुआ की नींद टूटी। वे हड़बड़ा कर उठी और झोला, लोटा समेटते हुए बाहर। फुआ उनींदी सी बाहर निकलीं। जैसे शाम को सो जाने के लिए शर्मिंदा हों। जिस घर में जग हो, वहाँ कोई औरत सो कैसे सकती है। भीड़-भड़क्का में एक देवताघर ही सबसे शांत होता है जहाँ दिन भर कोई नहीं आता जब तक पूजा न करनी हो। उनींदी फुआ को देखते ही जो जहाँ था, वहीं थम गया। समय जैसे थम गया था। ठीक वैसे ही जैसे लाल बत्ती को देख कर सारी ट्रैफिक रुक जाती है। सारी औरतें और आवाजाही कर रहे मर्द सब अपनी अपनी जगह ठिठक गए थे। हरे रंग की पतले पार (बार्डर) वाली मुड़ी तुड़ी सफेद साड़ी सिर से नीचे ढुलक आई थी। माथे पर थोपा गया तेल की हल्की गीली लकीर गालो पर खींच आई थी। काले लंबे बाल, खुले बिखरे। खटिया पर बैठी सरैया वाली चाची धड़फड़ा कर उठी और लड़खड़ा गईं। मनिकपुर वाली मँझली चाची पूजा का सामान लिए वहीं ठिठक गईं। लड्डू की माँ सबसे छोटी थीं, सो सिर पर आँचल धरे, लड्डू को लिए खंभे के सहारे खड़ी अँगना में मड़वा बनते देख रही थीं।

किसी को सूझ नहीं रहा था कि फुआ को टोके कौन। दादी तो थी नहीं। बड़की चाची के मुँह से अचानक निकला -

"हे बउआ... ई की कर लेली... की भेगेल अहाँ के... अनर्थ भेल..."

वो हाथ उठा कर सिर की तरफ इशारा कर रही थीं। मँझली चाची बोलीं -

"हे बउआ, जल्दी जाऊ वो अँगना, माँग धो लू... ई अहाँ के सोभा न देइअ..."

सबकी हालत देखकर और अब सुन कर फुआ को लगा कि कुछ अनर्थ हो गया है जो उनकी समझ से बाहर है। माथे की तरफ देखती कई जोड़ी आँखों ने उन्हें इशारा किया। दाएँ हाथ से तेल चुपड़े बालो को छुआ और हाथ नीचे लाईं।

'हे भगवान..." उनके मुँह से तेज चीत्कार निकली। ठीक वैसी ही जैसी फुफा जी के मरने की खबर लेकर टाइगर आया था।

वह माघ की शाम थी, ठंडी और धुंध से भरी हुई। फुफा जी गाँव लौट रहे थे। शायद इस बार फुआ को शहर ले जाते और वहाँ आगे की पढ़ाई का बंदोबस्त करवाते। कुछ इसी तरह की बातें घर में होती हुई सुनी थी। मन ही मन फुआ तितली बन गई थीं। इस आँगन से मुक्ति मिलेगी। शादी के बाद फुफा जी ने दोंगा की रस्म भी नहीं करने दी थी। बाबा से साफ कह दिया था कि हम देखभाल करेंगे, आप निश्चिंत रहिए, आपकी बेटी को कोई दिक्कत नहीं होगी। कभी शिकायत नहीं आएगी। बाबा ने सोचा था कि शादी करके दो साल बाद दोंगा करेंगे तब तक फुआ जवान भी हो जाएँगी। पर दारोगा फुफा ने उनकी एक न सुनी। फुआ गईं सो गईं। वे मायके जाने की बात करतीं तो फुफा जी जीप में बिठा कर ले जाते और सबसे मिलवा कर वापस। जैसे उन्हें भी कोई गुड़िया मिल गई हो जिसकी उपस्थिति उस वीरान घर को आबाद रखती थी। तीन भाइयों की माँ विहीन इकलौती बहन अपने घर में आबाद रहे, खुश रहे, और क्या चाहिए।

उस शाम दरवाजे पर फुआ की आँखें लगीं थीं, उनका प्रिय खिलौना टाइगर जो आने वाला था। जानती थी कि धूल उड़ाती जीव रुकेगी तो टाइगर दौड़ता हुआ घर में घुसेगा। फुआ इंतजार करते करते किवाड़ से उठंग गईं। देर हो रही थी और ठंड की शाम जल्दी अँधेरों से भर जाता है। फिर फुआ को यहाँ से उठ कर लालटेन जलाना पड़ेगा। हवा के झोंके के साथ धूल उड़ती दिखीं दूर कच्ची सड़क पर। फुआ को बड़ी भाभी का प्रिय झूमर याद आया...

लावे गेलई हरदी / उरत आवे गरदी / झूलत आवे हो / पातर पियाँ के जुलिफिया झूलत आवे हो...

मधुरकंठी फुआ खुल कर गाती थीं। बिना किसी लोकलाज की परवाह किए बगैर। नन्हीं सी उम्र में अनगिन गीत कंठस्थ।

जैसे ही अंतरे पर पहुँची...

जो हम जनती, पिया मोरे अयतई...

सड़क बीचे ना...

हम सेजिया बिछवती...

टाइगर बेतहाशा भागता हुआ, भौंकता हुआ किवाड़ से आ टकराया। फुआ उठंगी हुईं थी, वे लुढ़क गईं। टाइगर उनकी साड़ी खींच रहा था। उसका मुँह लाल हो गया था, मानो किसी का खून पी कर आ रहा हो।

फुआ चीखती चिल्लाती टाइगर को डाँटती हुई उठीं। टाइगर उनकी साड़ी खींच कर घसीटने लगा। फुआ चिल्लाईं। सास ससुर दालान से बाहर निकले। वे सबके पीछे पीछे पट्टीदारी के लोग भी बिना कुछ समझे पीछे भाग रहे थे। अजीब कोलाहल और नजारा सड़क पर। धूल ने सबके चेहरे धुँधले कर दिए थे। सबको टाइगर पर भयंकर क्रोध आ रहा था। कुछ तो अनहोनी घटा है जो यह मूक जानवर बता नहीं पा रहा। सास परेशान थीं कि घर की कनिया लथराई हुई कुत्ते के संग भागी जा रही है। बेटा साथ नहीं है। टाइगर को क्या हुआ है। ससुर जी को लगा, जरूर कहीं लफड़ा फँस गया है। टाइगर को भेजा होगा पर टाइगर उनके पास क्यों नहीं आया, सीधे दुल्हिन के पास क्यों गया। सब अपनी तरह से सोचते हुए बदहवास दौड़ रहे थे।

फुआ बार बार माथे पर हाथ फिराती और उनकी हथेली और लाल होती जाती। पूरी हथेली लाल रंग से रँग गई।

"कौन लगाया हमको सेनुर ...कौन किया रे ऐसा मजाक... क्या बिगाड़े थे हम किसी का...?"

फुआ बिलख कर रो रही थी। सब हतप्रभ होकर एक दूसरे को देख रहे थे। फुआ ये सवाल क्यों कर रही हैं। क्या हुआ है उनको? फुआ आँचल से माथा में रगड़ रगड़ कर सिंदूर छुड़ाने लगीं। दूर खड़ी लड्डू पर उनकी नजर अब तक नहीं पड़ी थी। लड्डू वहाँ से खिसक चुकी थी। लड्डू की माँ कटोरे में पानी और गमछा लेकर उनके सामने खड़ी थीं। फुआ रोए जा रही थीं। मेहमानों से भरे आँगन में वे उपहास और दया का पात्र बन चुकी थीं। उन्हें सच का पता लगाना ही होगा कि किसने किया ये सब और क्यों? किसने दुश्मनी निकाली? वे तो किसी का दिल नहीं दुखातीं। अपने राम नाम में ही मस्त रहती हैं। सब अपने सुखों में खोए रहते हैं और वे खटिया पर पड़ी रातों को तारे गिना करती हैं। कापी पर राम राम लिखा करती हैं। एक विधवा से इतना भद्दा और अशोभन मजाक कौन कर गया। जिंदगी के मजाक से वे तंग हो चुकी हैं। एक एक कर जिसने सब कुछ खो दिया हो, वह जिंदगी से बेजार कैसे न हो।

अभी सिंदूर को खुद ही मिटाना पड़ रहा है। उस ठंडी और स्याह शाम को किसी की ठंडी हथेली ने इतनी जोर से सिंदूर पोछा था कि उसकी चीख निकल गई। पोंछने वाली ने, लगता है कुछ बाल भी नोंच लिए थे। आँगन में पछाड़ खाकर रोती हुई सास और उन्हें सँभालती हुई रिश्ते नाते की औरतें, एक तरफ दीवार से लगी भयभीत फुआ जिसके पास सिर्फ टाइगर खड़ा था। हाँफता हुआ सा। नन्हीं कनिया की तरफ किसी का ध्यान नहीं था जिसकी पूरी जिंदगी खत्म हो गई थी। जो कहीं भी लौट कर नहीं जा सकती थी। जाए तो जाए कहाँ। आसरा टूट गया और रही सही कसर पट्टीदारी की औरतों ने उसकी सास के साथ मिल कर पूरी कर दी। सबके विलाप में नन्हीं कनिया के अभागी और मनहूस जैसी गालियाँ शामिल थीं। किशोरवय फुआ "माय गे माय..." करके रो रही थीं। एक औरत ने उन्हें दुरदुरा दिया -

"अभियो माय गे माय गे... कएले छ... सुहाग उजड़ गेलओ... तोहर मालिक चल गेलओ दुनिया से... करम फूटल लिखवा के लएलह है... जीवन भर कलंक लेके जियब अब... कौनौ जगह ठौर न मिलतओ... भजन कीर्तन करके दिन काटिअह..."

फुआ को लग गया था कि अब वह बाबा के पास लौट जाएँगी। यहाँ कोई नहीं रखेगा उन्हें। अपने साथ टाइगर को भी ले जा जाएँगी क्या? उसे टाइगर की चिंता होने लगी थी। सबकी जुबान पर उसी की चर्चा थी और इस समय वह सबका चहेता बन गया था। टाइगर ने अपनी स्वामिभक्ति निभा दी थी।

जिस शाम फुफा जीप से लौट रहे थे, दुसाध टोला में तनाव इतना बढ़ गया था कि दंगल शुरू हो गया था। दोनों पक्षों में झड़प होते देख फुफा गाड़ी से उतरे।

"का हुआ रे...?"

फुफा जोर से चिल्लाए।

"मालिक... आप जाइए ईहाँ से... हम आज लास बिछा देंगे ईहाँ... ललनवा गायब है सबेरे से... कौनौ पता नहीं है... सबेरे मालिकान बुलाए थे उसको, तब से गायब है... हमारा बेटा वापस करिए नहीं तो खेत में आग लगा देंगे, चाहे लास बिछा देंगे..."

बिल्टू हरवाहा के मुँह से गुस्से में झाग निकल रहा था।

"बात का है रे...?"

चौधरी टोला का दबंग डब्बू सिंह अपने लठैतों के साथ वहाँ लाठी भाँजता हुआ खड़ा था। रामेसर के लोग भी ईंट, पत्थर फरसा लेकर तने हुए थे।

"मालिक..." बिल्टू कुछ बोलना चाह रहा था।

"चुप्प साला... हम बताते हैं... भाई जी... बहुत अकड़ रहा था सरवा ललनवा, सुबह बुलाए थे, डाँट कर भगा दिए... अब ऊ कहँवा गया, हमें का पता... डूब मरा होगा किसी कुएँ पोखर में... ऊँहा न जाकर खोजो... हमसे का पूछते हो... बड़ा आया हमरी बराबरी करने वाला... भूतनी के... पूरा टोला ही फूँक देंगे... अपनी औकात भूल रहे हो का... मलेच्छ कहीं के..."

डब्बू सिंह की मूँछें फड़क रही थीं। उम्र हो गई थी पर रुआब में कहीं कमी नहीं। सामंतबोध से भरे हुए एक नंबर के अकड़ू जो जीवन भर जमीन बेच कर अय्याशी करता रहा। फुफा जी जानते थे उनके बारे में। वह गाँव के इसी नरक से निकलने के लिए नौकरी ज्वाइन करने चले गए थे। यही डब्बू सिंह था जो उनका मजाक उड़ाता था -"सिपाही बन गए हो भईया... हम तो अपनी रखवाली में सिपाही रखते हैं..."

फुफा हाथ जोड़ कर कट लेते थे। वे जानते थे कि खानदानी अकड़ुओं का दुनिया में कोई इलाज नहीं।

फुफा फिलहाल लड़ाई टलवाना चाहते थे। वे दोनों पक्षों से हाथ जोड़ कर लड़ाई टाल कर बातचीत से मामला सुलझाने का आग्रह किया।

"हम झगड़ा फसाद नहीं चाहते, हमरा रास्ता रोक कर काहे खड़ा हो गया। ई देखो, सरवा पूरी तैयारी से पूरा टोला ही उठा लाया है। इनको भगाओ पहिले... सर सोलकन

के दिमाग एतना खराब हो गया कि मलिकार का रास्ता रोक कर खड़ा हो गया... रहना है कि नहीं रे इस गाँव में... चल फूट यहाँ से..."

डब्बू सिंह की बात बीच में काटते हुए रमेसरा चिल्ला उठा -

"मालिक, अपने बता दिउ, बिल्टुआ के बेटा कहाँ गेलई, हम सब चल जाएब ईहाँ से... न बतायब त मार होके रहतई..."

"सार कहीं... मार करेगा रे... औकात है रे तेरी... गाँड़ में बहुत दम हो गया है का रे... पल्टनवा दे लाठी सरवा के कपार पर, दिमाग ठिकाने आ जाएगा..."

"नहीं... डब्बू सिंह... मत करो ये सब... रे बिल्टुआ, थाना जा, उहाँ नालिश कर। पुलिस के काम पुलिस के करे दे... आपस में ओझराने से का होगा ...हमरा थाना में नहीं आता है, हम कुछ नहीं कर सकते हैं पर तेरे साथ चल कर दारोगा जी को बोल देंगे... बस ये लड़ना बंद कर..."

फुफा लगभग मनुहार कर करे थे। दोनों तरफ पंद्रह बीस लोग थे। बिल्टुआ के साथ उनकी चीखती हुई औरतें भी थीं जो बार बार बोल रही थीं... "अबकि मरदा मरदी हो ही जाए... बहुत बरदास्त कर लिए जुल्म..."

"तुम बीच से हट जाओ रामपूजन सिंह..."

"मालिक... अपने बीच में न पड़... जाऊ घरे... हम आज फैसला करके जाएम... जहिया से हमर बेटा कलकत्ता से वापस आएल है, इनका सोहा न रहल है... ऊ खेत में काम न करे के चाहईछई... ओकरा रोज बोला बोला के बेइज्जत करईछथिन... खेत देलन है, कर्जा थोरे खाए हैं हम... हम सब नहीं करेंगे इनके खेत में काम... रोज गाली और लाठी के मार न खाएब..."

बिल्टुआ गला फाड़ रहा था। उसके माथा पर जैसे खून सवार था। वह किसी की सुनने वाला नहीं था। फुफा को लगा कि उनकी सुलह की कोशिशें बेकार हो रही हैं। दोनों पक्षो के अड़ियल रवैये ने माहौल को खूनी होने का संकेत दे दिया था। फुफा अब वहाँ से निकल जाना चाहते थे। टाइगर उन्हें खींचने लगा था। वे मुड़े कि दूर से कोई चीखती हुई आवाज सुनाई पड़ी -

"दौड़ो रे... ललनवा पोखरी किनारे उल्टा पड़ा हुआ है रे... जल्दी चलो रे..."

बिल्टुआ का माथा सनक गया। फरसा उठाया और डब्बू सिंह की तरफ फेंका। डब्बू सिंह जीप से उछल कर फुफा से जा टकराए और फरसा फुफा की छाती में धँस गया। लाठियाँ बरज उठीं और दोनों पक्ष एक दूसरे पर टूट पड़े। फुफा की मर्मांतक चीख पूरे गाँव में गूँज उठी और एक पल को सब थम गए। टाइगर तेजी से उछला और उसने पहले बिल्टू पर हमला बोला और फिर डब्बू सिंह की तरफ झपटा। चपेट में आया डब्बू सिंह का छोटा बहनोई छोटन सिंह। फुफा तड़प रहे थे, कटे पेड़ की तरह जमीन पर धराशायी, टाइगर का कहर जारी था। वह खूँखार हो चुका था। जिसे जिधर जगह मिली, भागा या छिप गया। डब्बू सिंह जीप लेके भाग निकला था।

दो कत्ल करके टाइगर वहाँ से भागता हुआ घर पहुँचा था। उसने फुआ का आँचल ही खींचा था। शायद उसे अहसास था कि दुनिया किसकी उजड़ गई, एक पल में। फुफा के शव के पास देर तक सिर झुकाए टाइगर ऐसे खड़ा था मानो कह रहा हो कि मालिक हम शर्मिंदा हैं कि हम आपको बचा नहीं पाए।

वह हर जगह मौजूद था, जहाँ जहाँ फुआ रहीं। फुआ को याद आया कि जब उनका सिंदूर धोया जा रहा था तो वे अपने बालों पर एक दो बार हाथ रख देती थीं तो नाईन उनका हाथ बेरहमी से झटक देती थी। फुआ दोहरे दर्द से चीख पड़ती थीं। टाइगर दूर खड़ा गुर्राता रहता। उसे अच्छा नहीं लग रहा था।

आज एक बार फिर से सिंदूर पोंछा जा रहा है, तब भी दूसरों की मर्जी थी, आज किसी की शरारत पर सिंदूर पोंछते हुए फुआ को टाइगर की याद आई और गले से घुटी घुटी सिसकी फूट पड़ी।

माथा जरूर फुआ का लाल हुआ था पर चेहरे सबके लाल हो गए थे। ऊपर ऊपर सब शांत दिखने की कोशिश कर रहे थे लेकिन भीतर में सबके कुछ खदक रहा था। दालान में बाबा समेत तीनों चाचाओ की बैठक चल रही है। आँगन में फुआ ने ऐलान कर दिया कि वे अब इस घर में नहीं रहेंगी। चाहे कुछ हो जाए, यहाँ से कल चली जाएगी। उन्हें किसी विधि विधान से मतलब नहीं। उन्हें किसी विवाह संस्कार से क्या लेना देना। जब उन्हें किसी रस्म रिवाज में हिस्सा नहीं लेना है... बस दूर से तमाशबीन बन कर सब देखना ही है। भीड़ भाड़ में अपने साथ हुए मजाक को वो सहन नहीं कर पा रही थीं। उनके ऐलान से तीन पट्टीदारों के इस आँगन में सनसनी फैल गई थी। सब जानते थे कि बाबा और उनके तीन बड़े भाई बुढ़िया फुआ को कभी न जाने देंगे। फुआ का ससुराल उनके पति के जाने के बाद ही खत्म हो गया था। बीमार ससुर ने सशर्त सारी

संपति फुआ के नाम कर दी और तीन साल के अंदर सास और ससुर दोनों बारी बारी से स्वर्ग सिधार गए। बेटे की मौत का गम इतना ज्यादा था कि उनसे ज्यादा समय झेला नहीं गया। ससुर ने बेटे की मौत के बाद बालिका बहू को जाने नहीं दिया। बाबा लिवाने गए तो उन्होंने साफ मना कर दिया। फुआ बाबा के साथ नइहर लौटना चाहती थीं पर सास ससुर के आगे किसी की एक न चली। वे बहू के सहारे बाकी जिंदगी काटना चाहते थे। उनके अलावा घर में दो ही तो सदस्य बचे थे, बहू और टाइगर। दोनों बेटे की याद दिलाते थे।

उस गमगीन घर में तीन साल फुआ ने रो रो के काटे। बाबा की बहुत मिन्नतों के बावजूद उन्हें जाने नहीं दिया गया। सास ससुर डरते थे कि कहीं बहू यहाँ से गई तो हाथ से न निकल जाए। अपने बुढ़ापे का सहारा वे इतनी आसानी से छोड़ने को तैयार नहीं थे। उन तीन सालों ने फुआ को बच्चे से जवान और अल्हड़ से समझदार लड़की में बदल दिया था। सास ससुर के जाने के बाद जब वे नितांत अकेली रह गईं तब बाबा उन्हें जबरन ले गए। तब खुद उनका जाने का मन नहीं था। पर अकेले उन्हें छोड़ना किसी को गवारा न हुआ। बाबा ने सारे खेत बटईया पर दे दिया और सबसे छोटे चाचा मुखिया नियुक्त किए गए जो यहाँ आते जाते रहेंगे। फुआ इन सबसे विरक्त, बेजार एक बक्सा और एक झोला लेकर नइहर आ गईं। वे असमय बूढ़ी बना दी गईं। बच्ची गई थी ससुराल, बूढ़ी वहाँ से लौटी। बीच की उम्र वे जी ही नहीं पाईं। जीती भी कैसे। नइहर में कुछ दिन तक तो सब ठीक चला। सबका व्यवहार सहानूभूति वाला होता। सब आदर से पेश आते। "फुआ फुआ..." से घर आँगन गूँजता रहता। फुआ अपने भजन कीर्तन में लगी रहतीं। यही काम ही बच गया था उनका। सादा जीवन और सादा भोजन। धीरे धीरे उन्होंने कमंडल पकड़ लिया। फुआ को साथ रखने को लेकर तीनों भाइयों में कुछ तनातनी भी अंदर अंदर शुरू हो चुकी थी। बाबा लाचार हो चुके थे।

नइहर में आए दो साल भी नही हुए थे कि एक दिन फुआ गायब हो गईं। एक भोर में उठीं और गायब। हुआ ये कि फुआ को कार्तिक स्नान करने का फरमान जारी हुआ था सो वे रोज मुँह अँधेरे भोर में उठ कर दूसरे आँगन में कुएँ के जगत पर खुले में नहातीं। कुआँ का पानी भपाता रहता। ठंडी हवा कटारी मारती पर पानी सुसुम (गुनगुना) होता। भपाते हुए पानी से भरा पूरी डोल सिर पर उड़ेल कर फटाफट ओसारे में भाग आतीं।

देवता घर में देर तक भजन गातीं फिर वहीं चटाई पर लुढ़क जातीं। छोटे चाचा ने एकाध बार खेतों का हिसाब देना चाहा तो फुआ ने जैसे कुछ सुना ही नहीं, वे अनठिया देतीं। वे पूरी तरह दुनियादारी से कट चुकी थीं। घर में जब जग-त्योहार होता तो वे

जरूर उत्साह में आ जातीं। सुहागिनों की भीड़ से थोड़ी दूर बैठ कर वे रोज शाम को नचारी गाने की रस्म पूरी करतीं।

फुआ के गायब होने की खबर हवा में थी और हवा तेजी से फैल रही थी। जवान और मुसमात (विधवा) लड़की घर से भाग जाए तो घर की क्या हालत होती। गाँव भर में मुँह दिखाने लायक नहीं रहते। बात छुपाने की रणनीति तैयार की गई और खोज में बड़के चाचा चले। चलते समय बड़की चाची ने उनके कान में कुछ कहा और उनके चेहरे का रंग बदल गया था। चेहरे पर चिंता और बदनामी की गहरी छाया थी पर कहीं न कहीं ये विश्वास भी था कि वे खोज निकालेंगे। ज्यादा दूर नहीं गई होगी। गाड़ी पकड़ने के लिए स्टेशन या बस स्टैंड गई होगी, पैदल तीन किलोमीटर की यात्रा करके। ये सोच कर बड़के चाचा थोड़ा परेशान हो उठे। बड़की चाची की बातों से उन्हें अंदाजा हो गया था कि फुआ कहाँ कहाँ जा सकती है। मन में थोड़ी आश्वस्ति जागी।

दूर दूर तक फैला हुआ गंगा का पाट। कोन्हारा घाट पर बहुत चहल पहल थी। दूर गंडक नदीं गंगा में मिलती हुई दिख रही थी। लोग बाग ठंड में भी डुबकी लगा रहे थे। धूप में रेत पर धूनी जमाए, कहीं पूरी भुजिया खाते लोग दिख रहे थे। कहीं लाल गमछा फैला कर सत्तू का लोइयाँ बनाया जा रहा था जिसे अचार के साथ खाने की तैयारी में लोग। खोमचे वाले कचरी तल रहे थे। आसपास भीड़ लगी थी। हर तरफ भीड़।

भीड़ कुछ ज्यादा थी। कार्तिक माह में भीड़ अपार होती है। कार्तिक में गंगा स्नान की अलग महत्ता होती है। गौरौल बस स्टैंड से बड़ी मुश्किल से टैंपो में ठुँसा कर बड़के चाचा हाजीपुर पहुँचे थे। गंगा स्नान करने और सोनपुर मेला में जाने वाले मेला घूमना और घूमनियों को पूरा हुजुम लदा हुआ था, अपनी अपनी पोटली लिए हुए। रंग बिरंगी फुदने वाली चोटी, उल्टे खुँसी हुई रंगीन मोटी क्लिपें, बड़े छाप वाली रंग बिरंगी साड़ियाँ और खिलखिलाती औरतें और बेचैन मर्दो की टोली जहाँ तहाँ फैली हुई थी।

सड़क पर उतर कर गंगा घाट तक पैदल रास्ता तय करना पड़ता है। गंगा का पानी तो दूर है। पर बलुआही मिट्टी दूर तक फैली है। पैर धँस रहा था। चाल में तेजी थी। घाट तक पहुँचने का रास्ता नेपाली छावनी मंदिर से होकर जा रहा था। चाचा चुपचाप बिना मंदिर देखे निकल जाना चाहते थे। नजर थी कि मंदिर की दीवारों की तरफ उठ उठ जाती थी। कुछ लोग मंदिर के चारों तरफ अचरज से देख रहे थे। कुछ माँएँ अपने बच्चों को वहाँ से दूर ले जाना चाह रही थीं। चाचा जानते थे कि फुआ यहाँ नहीं होगी। फुआ क्या, उनके खानदान की किसी लड़की या कम उम्र बेटे को भी इस मंदिर की तरफ आने की इजाजत नहीं थी। यह कोई पूजा की जगह भी नहीं थी। गंगा स्नान

करने आने वाले लोग एक बार उत्सुकता बस नेपाली मंदिर को जरूर देखते। बड़का चाचा पहले भी कई बार देख चुके थे। दीवारों पर बनीं कामुक मूर्तियों को देखते हुए वे पास से गुजर गए। हल्की स्मिति चेहरे पर आई। उपेक्षा में गर्दन झटका और तेजी से घाट की तरफ बढ़े... उस घाट की तरफ जो पुराणों में दर्ज है जहाँ, अदम्य संघर्ष, अथक प्रयास, अनूठी भक्ति और अविश्वसनीय हार जीत की कथा दर्ज है। वे यह भी जानते थे कि बिना ईश्वरीय मदद के न गज (हाथी) जीत सका था न आज वे फुआ को बरामद कर पाएँगे। मन ही मन गंगा मईया का नाम ले रहे थे। वे रेत पर बैठे, गंगा के पानी में डुबकी लगाते हर जवान और सफेद औरत को देख रहे थे। फुआ नहीं थीं उनमें। उनका ध्यान मंदिरों की तरफ गया। वे तेजी से गंगा किनारे स्थित गज-ग्राह मंदिर की तरफ बढ़े। मंदिर और गज ग्राह की बड़ी सी मूर्ति के चारो तरफ देखा। सब अनजाने चेहरे। वहाँ से निराश हो कर वे दुर्गा मंदिर की तरफ चले। गीली रेत पर पाँव धँस रहे थे। लगभग थकान हो रही थी। मन ही मन फुआ और बाबा दोनों को कोस रहे थे। चलते समय भी बाबा को खूब सुना आए थे -

"आप बेटी को सहका रहे हैं। सहक रही है। ज्यादा ही छूट दे रहे हैं। कहते हैं कि गाँव में मंदिर बनवा दीजिए, भजन कीर्तन करेगी, पर आप मेरी बात पर कान ही नहीं देते। घर में पाले हुए हैं जवान लड़की... कौन हर समय पहरा देगा।"

बाबा चुपचाप हुक्का गुड़गुड़ाते रहे। बेटों के आगे बोलती बंद हो गई थी। मन ही मन बेटी पर कुपित हो उठे। सोच में पड़ गए कि क्या परमानेंट इंतजाम किया जाए। मन ही मन सोच रहे थे पर कुछ तय नहीं कर पा रहे थे। कोई भी फैसला वे अकेले नहीं कर सकते थे। तीनो बेटे की सहमति से ही फुआ की किस्मत का फैसला हो सकता था। बड़के चाचा दुर्गा मंदिर की सीढ़ियाँ चढ़ रहे थे। वे मंदिर को कोना कोना तलाश लेना चाहते थे। मन में निरंतर प्रार्थना चल रही थी - "हे देवी मइया... आपकी शरण में ही मिल जाए। कितना दौड़ाओगी... मिल जाओ माया।"

मंदिर में दुर्गा चालीसा पढ़ती कई अकेली स्त्रियाँ दिखीं। कंठी माला धारण किए हुए स्त्रियाँ, घर से ठुकराई हुई या घर छोड़ कर निकली हुई, सब का आसरा इन दिनों यहीं मंदिर था। बड़के चाचा को मालूम था कि फुआ को पूजा पाठ में बहुत मन लगता है सो यहीं होगी। चलते समय कान में चाची ने जो कहा, वो उनको याद आया। सबको टटोलती हुई निगाहें अचानक स्थिर हो गईं। झट से मंदिर बाहर हुए और सड़क की तरफ भागे। उन्हें सोनपुर मेले में पहुँचना था जल्दी से जल्दी। यकीन था कि वहाँ फुआ मिलेंगी ही मिलेंगी। भीतर में मिलने की आश्वस्ति पनपी। मेले के शोर से उनका कान फटने लगा। लाउडस्पीकरों से आती तेज तेज आवाजें, भीड़ का शोर और पशुओ की

गंध से उनका माथा घूमने लगा। गाँव से कम ही निकलते थे। खेती-बारी की सारी जिम्मेदारी उन्हीं की थी। सारा जीवन गाँव में ही रह गए। बचपन में मेला घूमे थे। उसकी स्मृतियाँ बची हुई थीं। भीड़-भाड़ से उन्हें घबराहट होती थी सो वे कम ही हाट बाजार जाते। अबकी फँस गए तो आना पड़ा। घर की इज्जत का सवाल था। बेटे भतीजों में से किसी को भेजते तो बात फैल सकती थी। आजकल के लड़के पेट में बात कहाँ हजम कर पाते हैं। बक देंगे कहीं तो रही सही इज्जत भी मिट्टी में। सोच विचार में डूबे बड़का चाचा उद्घोषणा सुन कर ठिठक गए। "दो रुपये में देखिए, बिजली वाली लड़की... बिजली वाली ...बल्ब छुआएँगे तो जल उठेगी... ट्यूब सटाएँगे तो उजाला... देखिए देखिए ईश्वर का चमत्कार... भारी भीड़... रोज तीन शो... आइए..."

टिकट काउंटर पर लंबी लाइन और पंडाल के ऊपर एक लड़की की तस्वीर थी। चेहरा पूरा साफ नहीं था। चाचा ने गौर से चेहरा देखना चाहा। उचक उचक कर देखने की कोशिश करते। पता नहीं क्यों उन्हें डाउट हुआ... कहीं माया यहाँ तो नहीं... नहीं नहीं... वो यहाँ कैसे? वो बिजली वाली लड़की? नहीं... कभी ऐसा देखा तो नहीं... सुना भी नहीं... होगो कुछ ठग्गू मामला... चल राम जतन सिंह, फूट लीजिए यहाँ से... आपकी उम्र नहीं रही यह सब देखने की। अपनी बहन यहाँ नहीं हो सकती... कुछ गड़बड़ मामला है यहाँ... हम तो सीधे वहीं चलते हैं, जहाँ का नाम बड़की चाची ने कान में फुसफुसाया था। पूछते पाछते वे आखिर बड़े से पंडाल में घुस ही गए। वहाँ लोक गायकों की मंडली बैठी हुई थी जहाँ कुछ लोग हारमोनियन, झाल, ढोल, मँजीरा बजा रहे थे और एक आकर्षक जवान युवक और एक युवती वहाँ गाना गा रहे थे। पंडाल खचाखच भरा हुआ था। बड़के चाचा को समझ में नहीं आ रहा था कि उनकी बहन इतना अच्छा गाती कैसे हैं? वो भी सामाजिक जनजागरण के गाना। उन्हें याद आया कि कैसे बाबा भी आजादी आंदोलन के समय आजादी के गाने गाते फिरते थे। मंडली जमती थी और सारे नौजवान मिल कर अंग्रेजों को गाली देते हुए गाते थे... "छोड़ हो लाट साहब, मोर देसवा के परान हो...।" उनके बाद अब यह उनकी बेटी। इसे घर पर कभी गाते तो सुना नहीं। वहाँ तो नचारी और झूमर गाने में माहिर मानी जाती है। ईहाँ तो बड़का बड़का बोल गा रही है... "जागअ भाई, जागअ बहिनी, भोरवा के बेला अलई... उगलन सूरूजदेव, छंटल अन्हरिया, दुखवा के भेलई बिहान हो..." कुछ ऐसे ही समवेत स्वर उनके कान में पड़े। वे हैरान हुए। तीनों भाइयों ने कभी एक लाइन कुछ गलती से भी नहीं गाया था। भगत दुआरे पर आते, कुलदेवता का गान करते, पैसा, धान लेकर चले जाते। बाबा मजे लेकर उन्हें सुनते थे। तीनो भाइयों को कभी धैर्य से सुनते नहीं देखा गया। गाने के बोल सुन कर बड़का चाचा समझ गए कि कुछ समाज

को जगाने टाइप गाया जा रहा है। उन्हें ई सब से कोई मतलब कहाँ। उन्हें तो बस फुआ को वहाँ से खींच कर घर ले जाना था।

फुआ का बदला हुआ, क्रांतिकारी रूप देख कर सारे पट्टीदार हैरान रह गए। जिसके मन में जो आ रहा था, बके जा रहा था। बाबा कुछ न बोले। फुआ को देखा और मुँह फेर कर अंदर। मँझले चाचा ने दाँत किटकिटा कर क्या क्या न कहा। छोटे चाचा आग्नेय नेत्रों से घूरे जा रहे थे। आँगन में फुआ के स्वागत की अलग तैयारी थी। औरतों के मुँह से तरह तरह के फूल झरने बाकी थे। फुआ जानती थी कि उन्हें भूचाल का सामना करना पड़ेगा। सो उन्होंने अपनी आत्मा के कान और आँख दोनो बंद कर दिए। बंद करते करते आँगन की चाची के बोल जरूर कान में पड़ गए थे -

"बहुत बिख चढ़ा था का... भाग काहे न गई छउरा के साथ... भग्गल काहे कर रही थी गाने का ...पूरा मंडलिए को धोखा... मति मारी गई का, खुद अपना होस है आपको कि समाज जगाइएगा..., भजन मंडली होती तो कोई रोकता आपको...? "

"इससे अच्छा होता कि बाबा कहीं ब्याह ही कर देते... कोई न कोई दुब्याही मरद मिल ही जाएगा।

काहे घर में मुसीबत पाल रहे हैं... कब तक रच्छा कर पाएँगे... हम भी देखते हैं..., गाँव गाँव छिछियाएँगी कि तब बाबू साब की नाक नहीं कटेगी का...? मंडली में एको भले घर का होगा का...? सब सर-सोलकन..."

दुनिया का सबसे सुरक्षित खोल है अपना आत्मा का घर। जब उसमें घुस जाते हैं तो निर्भय निर्द्वंद्व हो जाते हैं। न किसी के कहे का दुख न चुभन का अहसास। हर काँटा बेअसर।

इसी आत्मस्थ स्थिति में फुआ घर में वक्त काट रही थीं। उन्हें घर की इज्जत का हवाला देकर घर से बाँध लिया गया।

ताजा घटना के बाद फुआ ने घर छोड़ने का ऐलान कर दिया। बाबा की तरफ मुखातिब हुईं -

"हम ससुराल की संपति का कागज देखना चाहते हैं। हम आज तक देखे नहीं, कभी पूछा नहीं आप लोगों से कि खेतों में क्या हो रहा है, उपज का पइसा कहाँ जा रहा है।

हमको अब भी मतलब नहीं। बस हमें वह कागज दिखा दीजिए, वसीयत का, जो आज तक आप लोग हमसे छुपछुपा कर रखे हैं, जिसमें कुछ शरत लिखी हैं। हम वो जानना चाहते हैं...

"कागज...? " छोटका चाचा चौंके... "हम कोई कागज लेके घूमते हैं का?"

"नहीं घूमते हैं तो का हुआ...? मालूम तो होगा ना कि क्या शर्त लिखी है कि आप लोग हमसे छिपा रहे हैं... हम किरिया खाके कहते हैं, कुछो उल्टा पुल्टा लिखा होगा न त नही मानेंगे न आपको मानने के लिए कहेंगे। हमको बताइए..."

"लिखा है कि तुम्हारी सारी संपत्ति की देखरेख हम लोग करेंगे और जब तक तुम घर में रहोगी, जीवन भर तुम्हे खर्चा पानी देंगे।"

मँझला भइया मुँह बना कर बोले।

"यह भी लिखा है कि तुम्हारी सपंति तुम्हारे अलावा कोई बेच नहीं सकता... और..."

बड़के भइया अटके।

"तुम्हारे लिए कहीं मंदिर बनवा कर देने को लिखा है, जहाँ तुम जीवन के बाकी दिन भजन कीर्तन करते काटोगी..."

बाबा का स्वर गीला था। उसमें पिता की कातरता थी।

"बाबूजी..."

"हमको मंदिर नहीं चाहिए। का करेंगे मंदिर का। देस में बहुत मंदिर है। एक ठो और बनवा कर भीड़ क्यों बढ़ाना चाहते हैं। वसीयत में कुछो लिखा है, सब कुछ वही लोग तय करेंगे का। हमको अपनी मर्जी से जीना है आगे। हमको अब अपने लिए नहीं जीना। हमको जीने का उद्देश्य मिल गया है बाबूजी।"

फुआ की आवाज जैसे खुल कर निकली।

"हम हाथ जोड़ते हैं... हमको नहीं चाहिए खेत पथार... हम का करेंगे ई सब लेकर... हमको मुक्त कर दीजिए। आप लोग हमसे मुक्त हो जाइए। हमसे अब घर में न रहा जाएगा। अब हमको बाकी जिनगी अपने हिसाब से जीने दीजिए। केतना रोकिएगा हमको? "

फुआ ने हाथ जोड़ लिए... बाबा काँप रहे थे।

"मुझे बन्नी गौरेया देवी के नाम से किशोरी निकेतन बनवा कर दे दीजिए। हम वहाँ बाल विधवाओ को रखेंगे, पढ़ाएँगे लिखाएँगे, लूर सिखाएँगे। किसी लायक बनाएँगे। आगे जिनगी शुरू करना चाहे तो उसमें भी मदद करेंगे। सुन रहे हैं न आप?"

फुआ की आवाज में इतनी दृढ़ता थी कि एकबारगी बाबा हिल गए। गुम्मा लड़की कबसे एतना बोलने लगी... वे सोच कर भीतर भीतर हैरान और भयभीत हो उठे। बहुत कुछ कहना, समझाना चाह रहे थे। अपने बेटों का मूड समझ गए थे। उन्हें चुनना था कि फैसला किसके हक में करें। किस्मत की मारी बेटी के पक्ष में या लोकलाज के पक्ष में। किधर जाएँ। फुआ के चेहरे को ध्यान से देखा। वे लगातार टकटकी लगाए बाबा की तरफ देख रही थीं। उन आँखों में कई छायाएँ थीं, तैरती हुईं। उनके भीतर कुछ अकस्मात विस्फोट-सा हुआ हो जैसे। कोई द्रव-सा बहता हुआ शिराओं में फैलने लगा था। वे ज्यादा देर झेल नहीं सकते थे।

"कहाँ...?"

बाबा की आवाज मुश्किल से निकली।

"कौन्हारा घाट...और कहाँ..."

"अकेले कैसे करबे माया...?"

बाबा की द्रवित और चिंतित आवाज सुन कर फुआ मुस्कुराई।

"बाबा... हम अकेले नहीं हैं। हमारे साथ बहुते लोग है... आप चिंता मत करिए..."

बोलते हुए फुआ की आँखों में सोनपुर मेले का कोलाज दिखा। उन आँखों में कुछ चेहरे, एक आश्रम और एक सुरीली आवाज थी, जो रह-रह कर उन्हें खींचती थी।

फुआ की हथेलियाँ कँपकँपा रही थीं। देह की मुद्रा किसी धावक-सी थी जो एक दो तीन सुनते ही रेस लगाने को तैयार बैठा हो। सिर से सफेद आँचल उतर कर कंधे पर आकर टिक गया था।

बाबा ने बेटी के फैले हुए हाथ देखे, कलाई पर नाम पता लिखा हुआ गोदना गायब था। उस जगह खाल जली हुई, सिकुड़ी हुई, गोल-सी दिख रही थी। इससे पहले कि आँखें बरसतीं, हुक्का गुड़गुड़ा दिया। वह समझ गए थे कि गौरेया अब यहाँ बसेरा नहीं

करेगी। फुआ ने झोला उठाया, तीनों भाइयों की काया एक साथ ग्राह-सी हरकत में आई, फुआ उनकी ओर गज-नेत्रों से देखती हुई दालान की सीढ़ियाँ उतर गईं।